अब्बू खाँ की बकरी

ज़ाकिर हुसैन

हिमालय पहाड़ का नाम तो तुमने सुना ही होगा। इससे बड़ा पहाड़ दुनिया में कोई नहीं है। हज़ारों मील चला गया है, और ऊँचा इतना है कि अभी तक इसकी ऊँची चोटियों पर कभी-कभार कोई हिम्मत वाला आदमी ही पहुँच पाया है, वह भी जैसे बस ढैया छूने को। इस पहाड़ के अन्दर वादियों में बहुत-सी बस्तियाँ भी हैं। ऐसी ही एक बस्ती अल्मोड़ा भी है।

अल्मोड़ा में एक बड़े मियाँ रहते थे। उनका नाम था अब्बू खाँ। उन्हें बकरियाँ पालने का बहुत शौक था। अकेले आदमी थे। बस, एक-दो बकरियाँ रखते। दिन-भर उन्हें चराते फिरते। उनके अजीब-अजीब नाम रखते, किसी का 'कल्लो', किसी का 'मंगलिया', किसी का 'गूजरी', किसी का 'हुक्मा'। उनसे न जाने क्या-क्या बातें करते रहते और शाम के वक्त

बकरियों को लाकर घर में बाँध देते। अल्मोड़ा पहाड़ी जगह है, इसलिए अब्बू खाँ की बकरियाँ पहाड़ी नस्ल की होती थीं।

अब्बू खाँ गरीब थे, बड़े अभागे। उनकी सारी बकरियाँ कभी-न-कभी रस्सी तुड़ाकर रात को भाग जाती थीं। पहाड़ी बकरियाँ बँधे-बँधे घबरा जाती हैं। ये बकरियाँ भागकर पहाड़ में चली जाती थीं। वहाँ एक भेड़िया रहता था, वह उन्हें खा जाता था। मगर अजीब बात है, न अब्बू खाँ का प्यार, न शाम के दाने का लालच इन बकरियों को भागने से रोकता था, न भेड़िये का डर। बस, शायद यह बात हो कि पहाड़ी जानवरों के मिजाज़ में आज़ादी की बहुत मुहब्बत होती है। वह अपनी आज़ादी किन्हीं दामों में देने को राज़ी नहीं होते और मुसीबत और खतरों के बावजूद आज़ाद रहने को सुख और आराम की कैद से अच्छा जानते हैं।

जहाँ कोई बकरी भाग निकली, अब्बू खाँ बेचारे सर पकड़कर बैठ गए। उनकी समझ ही में न आता था कि हरी-हरी घास मैं इन्हें खिलाता हूँ, छिप-छिपाकर पड़ोसियों के धान के खेत में भी इन्हें छोड़ देता हूँ, शाम को दाना देता हूँ, मगर ये कम्बख्त नहीं ठहरतीं और पहाड़ में जाकर भेड़िये को अपना खून पिलाना पसन्द करती हैं।

जब अब्बू खाँ की बहुत-सी बकरियाँ यूँ भाग गईं तो बेचारे बहुत उदास हुए और कहने लगे, "अब कभी बकरी न पालूँगा। ज़िन्दगी के थोड़े दिन और हैं, बिन बकरियों के ही कट जाएँगे।" मगर अकेलापन बुरी चीज है। थोड़े दिन तो अब्बू खाँ बिन बकरियों के रहे। आखिर न रहा गया। एक दिन कहीं से एक बकरी मोल ले आए। यह बकरी अभी बच्चा ही थी, कोई साल-सवा साल की होगी। पहली बार ब्याई थी। अब्बू खाँ ने सोचा कि कम-उम्र की बकरी लूँगा तो शायद हिल जाए और इसे जब पहले ही से अच्छे-अच्छे चारे-दाने की आदत पड़ जाएगी तो फिर यह पहाड़ का रुख न करेगी।

यह बकरी थी बहुत खूबसूरत। रंग इसका बिलकुल सफेद था। बाल लम्बे-लम्बे थे। छोटे-छोटे काले-काले सींग ऐसे मालूम होते थे कि किसी ने आबनूस की काली लकड़ी में खूब मेहनत से तराशकर बनाए हों। लाल-लाल आँखें, तुम देखते तो कहते कि अरे यह बकरी तो हमने ले ली होती। यह बकरी देखने में ही अच्छी न थी, स्वभाव की भी बहुत अच्छी थी। प्यार से अब्बू खाँ का हाथ चाटती थी। दूध चाहे तो कोई बच्चा दुह ले। न लात मारती थी, न दूध के बरतन गिराती। अब्बू खाँ भी उस पर लट्टू हो गए थे। उसका नाम 'चाँदनी' रखा था और दिन-भर उससे बातें करते थे। कभी अपने चचा घसीटा खाँ का किस्सा उसे सुनाते थे, कभी अल्लाह बख्शे - मामा नत्थू खाँ का।

अब्बू खाँ ने यह सोचकर कि

बकरियाँ शायद मेरे घर के तंग आँगन में घबरा जाती हैं, अपनी इस बकरी चाँदनी के लिए नया इन्तज़ाम किया था। घर के बाहर उनका एक छोटा-सा खेत था। उसके चारों ओर उन्होंने न जाने कहाँ-कहाँ से काँटे जमा करके डाले थे कि कोई उसमें न आ सके। उसके बीच में चाँदनी को बाँधते थे और रस्सी खूब लम्बी रखी थी कि खूब इधर-उधर घूम सके। इस तरह चाँदनी को अब्बू खाँ के यहाँ काफी समय गुज़र गया और अब्बू खाँ को यकीन हो गया कि एक बकरी तो हिल गई। अब यह न भागेगी।

मगर अब्बू खाँ धोखे में थे। आज़ादी की इच्छा इतनी आसानी-से दिल से नहीं मिटती। पहाड़ और जंगल में रहनेवाले आज़ाद जानवरों का दम घर की चारदीवारी में घुटता है, तो काँटों से घिरे हुए खेत में भी उन्हें चैन नहीं मिलता। कैद-कैद सब एक-सी। थोड़े दिन के लिए चाहे ध्यान बँट जाए मगर फिर पहाड़ और जंगल याद आते हैं और कैदी अपनी रस्सी तुड़ाने की फिक्र करता है। अब्बू खाँ का खयाल ठीक न था कि 'चाँदनी' पहाड़ की हवा भूल गई।

***

एक दिन सुबह-सुबह जब सूरज अभी पहाड़ के पीछे ही था कि चाँदनी ने पहाड़ की तरफ नज़र की। मुँह जो जुगाली की वजह से चल रहा था, रुक गया और चाँदनी ने दिल में कहा, "वे पहाड़ की चोटियाँ कैसी सुन्दर हैं! वहाँ की और यहाँ की हवा का क्या मुकाबला! फिर वहाँ उछलना, कूदना, ठोकरें खाना और यहाँ हर वक्त बँधे रहना। गर्दन में आठ पहर यह कम्बख्त रस्सी। ऐसे घरों में गधे और खच्चर ही

भले चुग लें, हम बकरियों को तो ज़रा बड़ा मैदान चाहिए।"

इस खयाल का आना था और चाँदनी अब वह पहली चाँदनी ही न थी। न उसे हरी-हरी घास अच्छी लगती थी, न पानी मज़ा देता था, न अब्बू खाँ की लम्बी कहानियाँ उसे भाती थीं। दिन-पर-दिन दुबली होने लगी। दूध घटने लगा। हर वक्त मुँह पहाड़ की तरफ रहता और रस्सी को खींचती और अजीब दर्द-भरी आवाज़ से 'में-में' चिल्लाती।

अब्बू खाँ समझ गए कि हो-न-हो कोई बात ज़रूर है, लेकिन यह समझ में नहीं आता था कि क्या है। एक दिन सुबह अब्बू खाँ ने दूध दुह लिया तो चाँदनी ने उनकी तरफ मुँह फेरा और अपनी बकरियों वाली ज़बान में कहा, "अब्बू खाँ मियाँ, मैं अब तुम्हारे पास रहूँगी तो मुझे बड़ी बीमारी हो जाएगी। मुझे तो तुम पहाड़ ही पर चली जाने दो।" अब्बू खाँ बकरियों की बोली समझने लगे थे। चिल्लाकर बोले, "या अल्लाह, यह भी जाने को कहती है, यह भी।" और मारे दुख के मिट्टी की हँडिया, जिसमें दूध दुहा था, हाथ से गिरी और चूर-चूर हो गई।

अब्बू खाँ वहीं घास पर बकरी के पास बैठ गए और बहुत दुखी आवाज़ में पूछा, "क्यों बेटी चाँदनी, तू भी मुझे छोड़ना चाहती है?"

चाँदनी ने जवाब दिया, "हाँ अब्बू खाँ मियाँ, चाहती तो हूँ।"

"अरे तो क्या तुझे चारा नहीं मिलता? या दाना पसन्द नहीं? बनिए ने घुने दाने मिला दिए हैं क्या? मैं आज ही और दाना ले आऊँगा।"

"नहीं-नहीं, मियाँ, मुझे दाने की कोई तकलीफ नहीं।" चाँदनी ने जवाब दिया। "तो फिर क्या रस्सी छोटी है? मैं और लम्बी कर दूँगा।" चाँदनी ने कहा, "इससे क्या फायदा?"

"तो आखिर फिर क्या बात है? तू चाहती क्या है?"

चाँदनी बोली, "कुछ नहीं, बस मुझे तो पहाड़ में जाने दो।"

अब्बू खाँ ने कहा, "अरी अभागिन, तुझे यह भी खबर है कि वहाँ भेड़िया रहता है! वह जब आएगा तो क्या करेगी?"

चाँदनी ने जवाब दिया, "अल्लाह ने दो सींग दिए हैं। इनसे उसे मारूँगी।"

"हाँ-हाँ, ज़रूर।" अब्बू खाँ बोले, "भेड़िये पर तेरे सींगों ही का तो असर होगा। वह तो मेरी कई बकरियाँ हड़प कर चुका है। उनके सींग तो तुझसे बहुत बड़े थे। तू तो 'कल्लो' को जानती नहीं थी, वह यहाँ पिछले साल थी, बकरी काहे को थी, हिरन थी हिरन, काला हिरन! रात-भर सींगों से भेड़िये के साथ लड़ी। मगर फिर सुबह होते-होते उसने दबोच ही लिया और खा गया।"

चाँदनी ने कहा, "अरे-रे-रे, बेचारी कल्लो! मगर खैर, अब्बू खाँ मियाँ,

इससे क्या होता है! मुझे तो तुम पहाड़ में जाने ही दो।"

अब्बू खाँ कुछ झुँझलाए और बोले, "या अल्लाह, यह भी जाती है। मेरी एक चहेती बकरी और उस कम्बख्त भेड़िये के पेट में जाती है...मगर नहीं-नहीं, मैं इसे तो ज़रूर बचाऊँगा। कम्बख्त, एहसान-फरामोश, तेरी मर्ज़ी के खिलाफ तुझे बचाऊँगा। अब तो तेरा इरादा मालूम हो गया है। अच्छा बस, चल तुझे कोठरी में बाँधा करूँगा, नहीं तो मौका पाकर चल देगी।"

अब्बू खाँ ने आकर चाँदनी को एक कोने की कोठरी में बन्द कर दिया और ऊपर से ज़ंजीर चढ़ा दी। मगर गुस्से और झुँझलाहट में कोठरी की खिड़की बन्द करना भूल गए। इधर उन्होंने कुण्डी चढ़ाई, उधर चाँदनी उचककर खिड़की में से बाहर यह जा, वह जा।

***

चाँदनी पहाड़ पर पहुँची तो उसकी खुशी का क्या पूछना था। पहाड़ पर पेड़ उसने पहले भी देखे थे, लेकिन आज उनका और ही रंग था। उसे ऐसा मालूम होता था कि सब-के-सब खड़े हुए उसे बधाई दे रहे हैं कि फिर हममें आ मिली। इधर-उधर सेवन्ती के फूल मारे खुशी के खिल-खिलाकर हँस रहे थे। कहीं ऊँची-ऊँची घास उससे गले मिल रही थी। मालूम होता था कि सारा पहाड़ मारे खुशी के मुस्करा रहा है और अपनी बिछुड़ी हुई बच्ची के वापस आने पर फूला नहीं समाता। चाँदनी की खुशी का हाल कोई क्या बताए! न चारों तरफ काँटों की बाड़, न खूँटा, न रस्सी! और चारा! वह जड़ी-बूटियाँ कि अब्बू खाँ बेचारे बावजूद अपनी सारी मुहब्बत और प्यार के, न ला सकते।

चाँदनी कभी इधर उछलती, कभी उधर, यहाँ से कूदी, वहाँ फाँदी, कभी चट्टान पर है, कभी खड्ड में, इधर ज़रा फिसली, फिर सँभली। एक चाँदनी के आने से सारे पहाड़ में जान-सी आ गई थी। ऐसा लगता था जैसे अब्बू खाँ की दस-बारह बकरियाँ छूटकर यहाँ आ गई हों।

एक बार घास पर मुँह मारकर जो ज़रा सिर उठाया तो चाँदनी की नज़र अब्बू खाँ के मकान और उस काँटोंवाले घेर पर पड़ी। उन्हें देखकर चाँदनी खूब हँसी और दिल में कहने लगी, "या खुदा, कोई देखे तो! कितना छोटा-सा मकान है और कैसा छोटा-सा घेर! या अल्लाह, मैं इतने दिन इसमें कैसे रही? इसमें मैं आखिर समाई कैसे थी!" पहाड़ की चोटी पर से इस नन्ही-सी जान को सारी दुनिया हेच नज़र आती थी।

चाँदनी के लिए यह दिन भी अजीब दिन था। दोपहर तक इतनी उछली-कूदी कि शायद सारी उम्र में इतनी उछली-कूदी न होगी। दोपहर ढलते उसे पहाड़ी बकरियों का एक गल्ला दिखाई दिया। गल्ले की बकरियों ने उसे खुशी-खुशी अपने पास बुलाया और उससे हाल-चाल पूछा। गल्ले में कुछ जवान बकरे भी थे। उन्होंने भी चाँदनी की बड़ी आवभगत की। बल्कि उसमें एक बकरा था, ज़रा काले-काले रंग का, जिस पर कुछ सफेद ठप्पे थे, वह चाँदनी को भी अच्छा लगा और वे दोनों बहुत देर तक इधर-उधर फिरते रहे। उनमें न जाने क्या-क्या बातें हुईं, और कोई तो था नहीं, एक चश्मा पानी का बह रहा था, उसने सुनी होंगी। कभी कोई वहाँ जाए और उस चश्मे से पूछे तो शायद कुछ पता लगे। और फिर भी क्या खबर, यह चश्मा भी शायद न बताए। एक की बात दूसरे से कहना कुछ अच्छी बात नहीं।

खैर, बकरियों का गल्ला तो न जाने किधर चला गया। वह जवान बकरा भी इधर-उधर घूमकर अपने साथियों में जा मिला। चाँदनी को अभी आज़ादी की इतनी आरज़ू थी,

उसने गल्ले के साथ होकर अभी से अपने ऊपर बन्धन लगाना पसन्द न किया और एक तरफ को चल दी। शाम का वक्त, हवा – ठण्डी हवा चलने लगी। सारा पहाड़ लाल-सा हो गया और चाँदनी ने सोचा, ओहो, अभी से शाम! नीचे अब्बू खाँ का घर और वह काँटों वाला घेर, दोनों कुहरे में छिप गए थे। नीचे कोई चरवाहा अपनी बकरियों को बाड़े में बन्द करने के लिए जा रहा था। उनकी गरदन की घण्टियाँ बज रही थीं। चाँदनी इस आवाज़ को खूब पहचानती थी, इसे सुनकर उदास-सी हो गई। होते-होते अँधेरा होने लगा और पहाड़ में एक तरफ से आवाज़ आई, "खो, खो!"

यह आवाज़ सुनकर चाँदनी को भेड़िये का खयाल आया। दिन-भर एक दफा भी उसका ध्यान इधर नहीं गया था। पहाड़ के नीचे से एक सीटी और बिगुल की आवाज़ आई। यह

बेचारे अब्बू खाँ थे, जो आखिरी कोशिश कर रहे थे कि इसे सुनकर चाँदनी फिर लौट आए। उधर से वह कह रहे थे, "लौट आ, लौट आ!" और इधर से जान के दुश्मन भेड़िये की आवाज़ आ रही थी।

चाँदनी के जी में कुछ तो आया कि लौट चले। लेकिन उसे खूँटा याद आया, रस्सी याद आई और काँटों का घेर याद आया। और उसने सोचा कि उस ज़िन्दगी से तो यहाँ की मौत अच्छी। आखिर को सीटी और बिगुल की आवाज़ बन्द हो गई। पीछे से पत्तियों की खड़खड़ाहट सुनाई दी। चाँदनी ने मुड़कर देखा तो दो कान दिखाई दिए, सीधे खड़े हुए और दो आँखें, जो अँधेरे में चमक रही थीं। भेड़िया पहुँच गया था।

***

भेड़िया ज़मीन पर बैठा था। नज़र बेचारी बकरी पर जमी थी। उसे इत्मीनान था, जल्दी न थी। खूब जानता था कि अब कहाँ जाती है। बकरी ने जो उसकी तरफ मुँह किया तो वह मुस्कराया और बोला, "ओहो, अब्बू खाँ की बकरी है। खूब खिला-पिलाकर मोटा किया है।" यह कहकर उसने अपनी लाल-लाल ज़बान अपने नीले-नीले होंठों पर फेरी। चाँदनी को कल्लो का किस्सा याद आया, जो अब्बू खाँ ने बताया था, और उसने सोचा कि "मैं क्यों ख्वाह-मख्वाह रात-भर लड़कर सुबह जान दूँ। अभी क्यों न अपने को हवाले कर दूँ।" लेकिन फिर खयाल किया कि "नहीं।" अपना सर झुकाया, सींग आगे को किए और पैंतरा बदलकर भेड़िये के मुकाबले पर आई कि बहादुरों का यही चलन है। कोई यह न समझे कि चाँदनी अपनी बिसात न जानती थी और भेड़िये की ताकत का उसे अन्दाज़ा न था। वह खूब जानती थी कि बकरियाँ भेड़िये को नहीं मार सकतीं। वह तो सिर्फ यह चाहती थी कि अपनी बिसात-भर मुकाबला करे। जीत-हार पर अपना काबू नहीं, वह अल्लाह के हाथ है। मुकाबला ज़रूरी है। जी में यह सोचती थी कि "देखूँ, मैं कल्लो की तरह रात-भर मुकाबला कर सकती हूँ या नहीं।"

कुछ देर जब गुज़र गई तो भेड़िया बढ़ा। चाँदनी ने भी सींग सँभाले और वह-वह हमले किए कि भेड़िये का जी जानता होगा। दसियों बार उसने भेड़िये को पीछे रेल दिया। कभी-कभी चाँदनी ऊपर आसमान की तरफ देख लेती और सितारों से आँखों-आँखों में कह देती कि "ऐ काश, इसी तरह सुबह हो जाए।"

सितारे एक-एक करके गायब हो गए। चाँदनी ने आखिरी वक्त में अपना ज़ोर दुगना कर दिया। भेड़िया भी तंग आ गया था कि दूर से एक रोशनी-सी दिखाई दी। एक मुर्ग ने कहीं से बाँग दी। नीचे बस्ती में मस्जिद से अज़ान की आवाज़ आई। चाँदनी ने दिल में कहा, "अल्लाह, तेरा शुक्र है।" मैंने अपने बस-भर

मुकाबला किया, अब तेरी मर्ज़ी। अज़ान देनेवाला आखिरी दफा अल्लाहो-अकबर कह रहा था कि चाँदनी बेदम ज़मीन पर गिर पड़ी। उसकी सफेद बालों की पोशाक खून से बिलकुल लाल थी। भेड़िये ने उसे दबोच लिया और खा गया।

ऊपर पेड़ों पर चिड़ियाँ बैठी देख रही थीं। उनमें इस पर बहस हो रही है कि जीत किसकी हुई। सब कहती हैं कि भेड़िया जीता। एक बूढ़ी-सी चिड़िया है, उसकी ज़िद है कि चाँदनी जीती।

ज़ाकिर हुसैन (1897-1969): भारतीय अर्थशास्त्री और राजनीतिज्ञ थे, जिन्होंने 13 मई, 1967 से 3 मई 1969 (अपनी मृत्यु तक) तक भारत के तीसरे राष्ट्रपति के रूप में कार्य किया। कुछ वर्ष जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली और अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ के कुलपति भी रहे। 1963 में *भारत रत्न* सम्मान से नवाज़ा गया।

सभी चित्र: तविशा सिंह: भोपाल निवासी तविशा हमेशा स्केचिंग या किताब पढ़ते हुए मिलती हैं। आप इलस्ट्रेटर-चित्रकार हैं। कहानियों के प्रति उनका बढ़ता लगाव, उन्हें चित्रों के साथ स्टोरी-टेलिंग करने की कला की ओर ले गया।

इस कहानी के चित्र कट-आउट शैली बनाए गए हैं।

यह कहानी राधाकृष्ण प्रकाशन द्वारा प्रकाशित ज़ाकिर हुसैन के कहानी संग्रह *अब्बू खाँ की बकरी* से साभार।